# महादेवी वर्मा

**जीवन परिचय**

महादेवी वर्मा का जन्म 1907 ई0 में उत्तर प्रदेश के जनपद फर्रूखाबाद में एक सुशिक्षित मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। पिता श्री गोविन्द प्रसाद एम.ए., एल.एल.बी., की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद मुख्याध्यापक के रूप में कार्यरत थे और माता हेमरानी देवी भी शिक्षित और धार्मिक विचारों वाली कुशल गृहिणी थीं। अपनी आरंभिक शिक्षा इन्होंने घर पर ही पूरी की। अध्ययन के साथ ही संगीत और चित्रकला में भी इनकी प्रारंभ से ही रुचि रही है। नौ वर्ष की अल्पायु में ही इनका विवाह श्री रूपनारायण वर्मा से हुआ। फलस्वरूप इंदौर से वे अपनी ससुराल प्रयाग में आ गईं। वहीं पर इन्होंने मिडिल से लेकर एम.ए. संस्कृत तक की औपचारिक शिक्षा प्राप्त की। अपनी शैक्षणिक योग्यता के कारण एम.ए. पास करते ही इन्हें प्रयाग महिला विद्यापीठ, के प्राचार्य का पद मिला। काफी लम्बे समय तक इस पद पर इन्होंने अपने दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया।

असमय-वैधव्य ने महादेवी के जीवन को आत्मलीन, शांत और एकाकी अवश्य बनाया, लेकिन इनका बहिर्मुखी व्यक्तित्व अत्यंत उदार, मिलनसार और परहित, विशेष रूप से दीन-दुखियों की सेवा-सहायता की भावना से ओतप्रोत था। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' शीर्षक निबंध-संग्रह, 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' जैसे संस्मरणों और रेखाचित्रों में इनके बहिर्मुखी व्यक्तित्व की अत्यंत जीवंत अभिव्यक्ति हुई है। लेकिन इनकी कविताओं में वेदना, करूणा और अकेलेपन की आत्मलीनता ही अधिक व्यक्त हुई है, जो इनके अंतर्मुखी व्यक्तित्व को ही उजागर करती है, उनके व्यक्तित्व का यह अंतर्विरोध उनके पाठकों के लिए ही नहीं, वरन् आलोचकों के लिए भी एक समस्या बन गया है। उनके गद्य और पद्य साहित्य को आमने-सामने रख दिया जाए तो दोनों दो अलग-अलग भिन्न व्यक्तियों की परस्पर विरोधी चेतना की रचनाएँ लगेंगी। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही महादेवी के काव्य का मूल्यांकन करना उचित होगा।

**साहित्यिक योगदान**

प्रसाद और निराला की भाँति ही महादेवी का कृतित्व भी उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है। यद्यपि कवयित्री के रूप में ही महादेवी का मूल्यांकन अधिक हुआ है, लेकिन इनका गद्यकार रूप भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इनकी कृतियों के माध्यम से इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है। यहाँ हम महादेवी के गद्यकार रूप को छोड़कर केवल कवि रूप पर ही विचार करेंगे। प्रसाद, निराला, पंत के साथ ही महादेवी वर्मा भी छायावादी काव्य-धारा की एक प्रमुख स्तंभ हैं। छायावादी काव्यधारा द्विवेदी युगीन स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर, बहिर्मुखता से अंतर्मुखता की ओर तथा मानव की अपेक्षा प्रकृति की ओर अधिक

उन्मुख हुई हैं। वैयक्तिक चेतना की प्रधानता, लौकिक प्रेम की अपेक्षा अलौकिक और आध्यात्मिक प्रेम की प्रधानता, सजीव प्रकृति-चित्रण, भाषा एवं शैली की कलात्मकता का विशेष आग्रह छायावादी काव्य-धारा की मूलभूत विशेषता है। ये सारी प्रवृत्तियाँ महादेवी के काव्य में भी अत्यंत कुशलता से समाविष्ट हुई हैं।

महादेवी का काव्य उनकी विशुद्ध निजी अनुभूतियों का काव्य है। इनकी निजी अनुभूतियों में भी वेदना, करूणा और अकेलेपन की पीड़ा ही अधिक व्यक्त हुई है। अपनी पीड़ा, वेदना और करूणा को वे अधिकांशतः प्रकृति और उसके पीछे छिपी हुई सत्ता के माध्यम से व्यक्त करती हैं। अतः उनके काव्य में रहस्य और जिज्ञासा का भाव अधिक व्यक्त हुआ है। इसके साथ ही आतुरतापूर्ण आत्म-निवेदन की प्रवृत्ति भी इनमें स्थान-स्थान पर उजागर हुई है। 'तुम आ जाते एक बार', 'दिया क्यों जीवन का वरदान', 'शून्य मंदिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी' इस प्रकार की सारी कविताएँ अज्ञात प्रिय को संबोधित हैं, जो प्रेम की अलौकिकता और आध्यात्मिकता का संकेतक है। अज्ञात के प्रति यह रूख कवयित्री की कविता में एक रहस्य की सृष्टि करता है। यह रहस्यवाद प्रकृति के संदर्भ में भी महादेवी में देखा जा सकता है, 'निराला को धो देता राकेश' 'वे मुस्काते फूल नहीं', 'तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान', 'मुस्काता संकेत भरा नभ', 'लाए कौन संदेश नये घन' आदि कविताएँ प्रकृति के नाना रूपों में उस अज्ञात प्रिय का संकेत देती हैं।

अज्ञात प्रिय से मिलनाकांक्षा, उससे न मिल पाने की वेदना को ही अपना मूलधन मान लेना, विरह में ही अपने को 'चिर' बनाए रखने का विश्वास आदि महादेवी को मीरा की तरह चिर विरहिणी का रूप प्रदान करते हैं। इन्हें चिर विरहिणी बने रहने में ही संतोष प्राप्त होता है क्योंकि तृप्ति साधना में बाधक होती है :'बुझते ही प्यास हमारी/ पल में विरक्ति बन जाती/ या 'तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूँगी पीड़ा।' इस तरह की तमाम सारी अभिव्यक्तियाँ महादेवी को दुखवादी सिद्ध करती हैं। दुखानुभूति को अपनी अमूल्य निधि स्वीकार करते हुए इन्होंने एक स्थान पर लिखा है,'जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला, उस पर पार्थिव (सांसारिक) दुख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी।' इस संबंध में अन्यत्र उन्होंने लिखा है,'दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। लेकिन ये दोनों कारण महादेवी के काव्य में व्यक्त दुख के स्वरूप और उसकी प्रकृति को देखते हुए अधिक तर्कसंगत नहीं प्रतीत होते।

महादेवी छायावादी काव्य-धारा की प्रमुख स्तंभ रही हैं। अतः इस काव्यधारा की भाषा-शैली के सभी गुण इनमें भी मिल जाते हैं। कोमलकांत पदावली, परिनिष्ठित चित्रमयी भाषा, लाक्षणिकता, अलंकार विधान में नये उपमानों का प्रयोग, लाक्षणिकता, समुचित प्रतीक

विधान आदि के कुशल प्रयोग से महादेवी ने अपनी अभिव्यक्ति को अत्यंत प्रभावशाली बनाया है। छायावादी काव्य का गीति तत्व इनके काव्य की एक मात्र शैली बन गया है। गीतिशैली की सम्पूर्ण विशेषताएँ महादेवी के काव्य में अत्यंत निपुणता से समाविष्ट हुई हैं। आत्माभिव्यक्ति, भावसघनता, संक्षिप्तता और लयात्मकता गीति के प्रमुख तत्व हैं। इन सबका समावेश महादेवी के गीतों में मिलता है। गीत की विशेषता बताते हुए इन्होंने स्वयं लिखा है कि'साधारणतः गीत' व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।' ये सारी विशेषताएँ इनके गीतों में साकार हुई हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महादेवी के काव्य की विषय-वस्तु के चित्रण के लिए उनके द्वारा निर्धारित शिल्प अत्यंत प्रौढ़ और प्रभावोत्पादक है। महादेवी की कुल रचनाएँ निम्नलिखित है :

**काव्य :** 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'संध्यागीत', 'गीतपर्व', 'दीप शिखा', 'संधिनी', 'परिक्रमा', 'नीलांबरा', 'आत्मिक' तथा 'दीपगीत' आदि।
**रेखाचित्र और संस्मरण :** 'श्रृंखला की कड़ियाँ', तथा 'अतीत के चलचित्र' आदि।
**अनुवाद :** 'सप्तपर्णा' (वेदों से लेकर गीत गोविन्द तक के महत्वपूर्ण और सुंदर अंशों का संस्कृत से हिदीं में अनुवाद)।

## 'जो तुम आ जाते एक बार'

जो तुम आ जाते एक बार !

कितनी करुणा कितने सँदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग;

गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार[1]!

हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद,

छा जाता जीवन में वसन्त
लुट जाता चिर संचित चिराग,
आँखें देती सर्वस्व वार !

---

1 पाँव को पखारना

## 'विरह का जलजात जीवन'

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल-कण के बने घन सा क्षणिक् मृदु गात !
जीवन विरह का जलजात !

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास,
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात।
जीवन विरह का जलजात !

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार,
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात !
जीवन विरह का जलजात !

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात !
जीवन विरह का जलजात !

## 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ'

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद थी मेरी अचल निस्पंद कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में;
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ;
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

आग हूँ जिसके ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है, कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में,
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ !

## 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल'

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
  यग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
  प्रियतम का पथ आलोकित कर !

सौरस फैला विपुल धूप बन,
  मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन,
  दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
  तेरे जीवन का अणु गल गल।
  पुलक पुलक मेरे दीपक जल !

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझसे ज्वाला-कण,
  विश्व-शलभ सिर धुन कहता मैं
  हाय न जल पाया तुझ में मिल !
  सिहर सिहर मेरे दीपक जल।

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
  जलमय सागर का उर जलता,
  विद्युत् ले घिरता है बादल !
  विहँस विहँस मेरे दीपक जल !

## 'टूट गया वह दर्पण निर्मम'

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

उसमें हँस दी मेरी छाया
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु - हास ने विश्व सजाया,

रहे खेलते आँख मिचौनी
प्रिय ! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम'।

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

अपने दो आकार बनाने;
दोनों का अभिसार दिखाने,
भूलों का संसार बसाने,

जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हँस हँस दे डाला था निरुपम !

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

कैसा पतझर कैसा सावन
कैसी मिलन विरह की उलझन
कैसा पल-घड़ियोंमय जीवन;

कैसे निशि-दिन कैसे सुख-दुख
आज विश्व में तुम हो या तम !

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

किसमें देख सँवारूँ कुन्तल,
अंगराग पुलकों का मल-मल,
स्वप्नों से आँजूँ पलकें चल,

किस पर रिझँ किस से रूठूँ,
भर लूँ किस छवि से अन्तरतम !

टूट गया वह दर्पण निर्मम !

आज कहाँ मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुण्ठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,

तुम मुझ में अपना सुख देखो
मैं तुम में अपना दुख प्रियतम !

टूट गया वह दर्पण निर्मम।

## 'मैं नीर भरी दुख की बदली'

मैं नीर भरी दुख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,

नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !

मेरा पग पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,

नभ के नव रँग बुनते दुकूल,
छाया में मलय बयार पली !

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल,

रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन-अंकुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिह्न न दे जाता जाना,

सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

## 'शलभ मैं शापमय वर हूँ !'

शलभ मैं शापमय वर हूँ !
किसी का दीप निष्ठुर हूँ !
ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृङ्गारमाला,
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रंगशाला,
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ !
नय में रह किन्तु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी,
प्राण में कैसे बसाऊँ
कठिन अग्नि-समाधि होगी,
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मन्दिर हूँ।
हो रहे झर कर दृगों से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल,
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल,
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ !

## 'चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !'

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफान बोले,

पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना !
जाग तुझको दूर जाना !

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?
पन्थ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?

विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबो देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !
जाग तुझको दूर जाना !

## 'फिर विकल हैं प्राण मेरे'

फिर विकल हैं प्राण मेरे !
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है !
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?
क्यों मुझे प्राचीर बन कर
आज मेरे श्वास घेरे !

सिन्धु की निःसीमता पर लघु लहर का लास कैसा?
दीप लघु शिर पर धरे आलोक का आकाश कैसा ?
दे रही मेरी चिरन्तनता
क्षणों के साथ फेरे !

बिम्बग्राहकता कणों को शलभ को चिर साधना दी,
पुलक से नभ नभ धरा को कल्पनामय वेदना दी,
मत कहो हे विश्व'झूठे'
हैं अतुल वरदान तेरे !

नभ डुबा पाया न अपनी बाढ़ में भी क्षुद्र तारे;
ढूँढने करुणा मृदुल घन चीर कर तूफान हारे;
अन्त के तम में बुझे क्यों
आदि के अरमान मेरे !

## 'क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन !'

क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन !
बन गया तम-सिन्धु का, आलोक सतरंगी पुलिन सा,
रजभरे जग-बाल से है, अंक विद्युत् का मलिन-सा,

स्मृति-पटल पर कर रहा अब
वह स्वयं निज रूप अंकन !

चाँदनी मेरी अमा का भेंटकर अभिषेक करती,
मृत्यु जीवन के पुलिन दो आज जागृति एक करती,

हो गया अब दूत प्रिय का
प्राण का सन्देश-स्पन्दन !

सजनि मैंने स्वर्ण-पिंजर में प्रलय का वात पाला,
आज पुंजीभूत तम को कर, बना डाला उजाला,

तूल से उर में समा कर
हो रही नित ज्वाल चन्दन !

**'यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो'**

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा-स्वर,
गये आरती वेला को शत-शत लय से भर,

जब था कल कंठों का मेला,
विहँसे उपल तिमिर था खेला,
अब मन्दिर में इष्ट अकेला,

इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।

चरणों से चिह्नित अलिन्द की भूमि सुनहली,
प्रणत शिरों के अंक लिये चन्दन की दहली,

झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप - अर्घ्य - नैवेद्य अपरिमित,
तम में सब होंगे अन्तर्हित,

सबकी अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो।

पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,

साँसों की समाधि सा जीवन,
मसि-सागर का पंथ गया बन,
रूका मुखर कण-कण का स्पंदन,

इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो।

झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,

जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा - जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो।

## 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र'

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन !!

निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग !
जग नीड़ शब्द औ' श्वास हीन,
च्युत, अस्तव्यस्त पंखों-से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन !

कंकाल-जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर, - पल्लव लाली !
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली !

मंजरित विश्व में यौवन के
जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय-स्वर मदिरा से
भर दे फिर नव युग की प्याली!

**कविताओं के बारे में**

महादेवी की ग्यारह कविताएँ पाठ्यक्रम में प्रस्तावित हैं जो उनके चार काव्य-संग्रहों से ली गई हैं। ये काव्य-संग्रह हैं : 'नीहार' (1930), 'नीरजा' (1935), 'संध्यागीत' (1936) तथा 'दीपशिखा' (1942)। 'जो तुम आ जाते एक बार' नीहार संग्रह से, 'विरह का जलजात जीवन', 'तुम्हारी बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ', 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' और' टूट गया वह दर्पण निर्मम' **नीरजा** से, 'मैं नीर भरी दुख की बदली', 'शलभ मैं शापमय वर हूँ', 'चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना', 'फिर विकल हैं प्राण मेरे' तथा 'क्यों मुझे प्रिय हो न बंधन' **'संध्यागीत'** से तथा 'यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो' **दीपशिखा** से लिए गए हैं।

**'जो तुम आ जाते एक बार'** कविता में कवयित्री प्रियतम से मिलने की उत्कट आकांक्षा को अभिव्यक्त करती है। स्त्री के जीवन में प्रियतम का कितना महत्व है और प्रियतम के बिना उसका जीवन कितना सूना है, यही भाव इस कविता में अभिव्यक्त हुआ है। **'विरह का जलजात जीवन'** में कवयित्री अपने जीवन की व्यथा को अभिव्यक्त करती है। जलजात यानि कि कमल जो जल में पलता-बढ़ता है, उसी प्रकार कवयित्री का जीवन भी वेदना से रस लेकर विकसित हो रहा है। भावनाओं के कारण उसके हृदय में आँसू के कोष हैं। ये आँसू आँख की टकसाल में तप कर बाहर निकलते हैं। इन आँसुओं में केवल वेदना ही नहीं है, उनमें आनंद भी है।

कवयित्री का मानना है कि वेदना में भी एक प्रकार का आनंद होता है। यह आनंद हृदय के भावों को लुटाने का होता है। **'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ'** कविता में कोमल भावों की अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। कवयित्री प्रकृति के कण-कण को सजीव मानती है। वह जड़-चेतन में अंतर नहीं करती है। उनका मानना है कि एक ही सत्ता से जड़ और चेतन दोनों प्रकाशित होते हैं। इस बात को उन्होंने कविता में विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से व्यक्त किया है। **'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल'** में दीपक स्नेह का प्रतीक है। स्नेह से ही प्रियतम का पथ आलोकित किया जा सकता है। भावों की तरलता से ही स्नेह के दीपक को ऊर्जा मिलती है। प्रेम और स्नेह श्रेष्ठ मानवीय भाव हैं। इन्हीं से सृष्टि प्रकाशित होती है। **'टूट गया वह दर्पण निर्मम'** में दर्पण हृदय का प्रतिबिंब है। हृदय में ही सुख-दुख के भाव उमड़ते हैं। रूप, श्रृंगार की रचना भावों को रूपाकार देने के लिए होती है। भावों के बिना सुख-दुख, विरह-मिलन, दिन-रात सभी कुछ शून्य है। विश्व में भाव है अथवा अंधकार है।

**'मैं नीर भरी दुख की बदली'** में हृदय के उमड़ते हुए भावों का चित्रण है। जिस प्रकार बादलों में रंग और जलकण होते हैं उसी प्रकार भावों की सत्ता होती है। भाव इतने परिवर्तनशील होते हैं कि उनमें कंपन, स्थिरता का अनुभव किया जा सकता है। आँखों में

प्रेम के दीपक जलते हैं और पलकें भींग उठती हैं। कवयित्री के मन में उठने वाले भाव निजी नहीं रह जाते, बल्कि उनका प्रसार सृष्टि के कण-कण में होता है। **'शलभ मैं शापमय वर हूँ'** में शलभ आत्मदान का प्रतीक है। इस आत्मदान में वेदना है। इस वेदना में आनंद की अनुभूति है। इसलिए आनंद और वेदना के परस्पर विरोधी भावों का सृजन एक साथ होता है। इसी अर्थ में वे शाप भी हैं, वरदान भी हैं। प्रेम न मिलने पर हृदय में आक्रोश जगता है। हृदय से उल्का की तरह गर्म-गर्म राख निकलती है। प्रियतम के अभाव में प्रेम संभव नहीं है। इसलिए कवयित्री कहती है कि प्रियतम के न रहने से मुझमें वह ज्वाला नहीं भड़कती। विडंबना यह है कि नायिका का हृदय बिना ज्वाला के ही राख हो जाता है।

**'चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना'** में देशभक्ति का स्वर है। इस कविता का उद्देश्य देशभक्तों को जागरण का संदेश देना है। कविता कहती है कि कठिनतम परिस्थितियों में भी अपना उद्देश्य हासिल करना चाहिए। प्रलय ही क्यों न आ जाए, तूफान-झंझावात आ जाएँ, हिमालय में भूचाल आ जाए - इन सब बाधाओं को लांघ कर अपना ध्येय प्राप्त करना चाहिए। **'फिर विकल हैं प्राण मेरे'** में क्षितिज को तोड़कर उस पार जाने का आग्रह है। यह क्षितिज हृदय का बंधन भी हो सकता है। कवयित्री छोटे-छोटे सुखों की बजाए चिरंतन सत्य को प्राप्त करने की बात कहती है। **'क्यों मुझे प्रिय हो न बंधन'** में उल्लास की अभिव्यक्ति है। निराशा के बीच आशा की किरण फूटती दिखाई पड़ रही है। जगत एक धूल भरे बालक के समान है और जगत की स्थितियों में चंचलता छाई हुई है। आकाश का उल्लास हृदय में समा कर हृदय की ज्वाला को शीतलता प्रदान कर रहा है। **'यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो'** में पूरा बिंब मंदिर का है। मंदिर पवित्रता और शांति का प्रतीक है। कवयित्री शांति और पवित्रता के प्रकाश को अखंड रूप से जलने देना चाहती है। जीवन के कोलाहल और व्यस्तता में मनुष्य अपनी आत्मशक्ति के प्रकाश को नहीं पहचान पाता है। इस आत्मप्रकाश को पाने की आकांक्षा की अभिव्यक्ति कविता में हुई है।

महादेवी ने अपनी भाषा को बहुत तराशा है। और सीमित शब्दावली में बिंब सौंदर्य और संगीतात्मक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। वेदना और पीड़ा की भाषा से उनका काव्य भरा हुआ है। आंसू, दृगजल, मधुकण जैसे शब्द उनकी कविता में बार-बार आते हैं। रजनी, रात, यामिनी जैसे अंधकार से जुड़े शब्द उनके मन की आंतरिक पीड़ा, अकेलेपन को अभिव्यक्ति देते हैं। उनकी कविता निजी अनुभूति को आधार बनाकर आगे बढ़ती है इसलिए वह गीतरूप में ही सामने आती है। महादेवी की कविता में भावात्मक आवेग है, किंतु इस आवेग में लय की लंबी तान नहीं है। महादेवी की कविता में रंगबोध का सौन्दर्य भरा हुआ है। रंगों में उनका रहस्यवाद घुला-मिला रहता है। उनकी कविता में निजी शैली की प्रधानता है।

महादेवी ने स्त्री हृदय के निवेदन, करुणा, विरह तथा आत्म-समर्पण को अपनी कविता का आधार बनाया है। दीप उनका प्रिय प्रतीक है जिसका गलने, घुलने और जलने के संदर्भ में प्रयोग किया गया है। इसका मुख्य अभिप्राय आत्मदान का है। कवयित्री दुःख और पीड़ा को सहने की अदम्य क्षमता का संदेश देती है। महादेवी दुख और पीड़ा को अभिव्यक्त करती है किंतु दुख, पीड़ा के कारणों की चर्चा नहीं करती। यही कारण है कि यह दुःख, पीड़ा वायवीय रूप में ही प्रकट होती है। मुख्यतः उनके काव्य में श्रृंगार भाव की अभिव्यंजना है। किंतु भाव के आलंबन का पता नहीं चलता है।-अज्ञात प्रियतम के प्रति वे अपनी भावाभिव्यंजना प्रकट करती हैं। इसी बिंदु पर उनकी कविता में रहस्यवाद की छाया दिखाई पड़ती है। यह रहस्यवाद उनके काव्य को एक दार्शनिक आवरण प्रदान करता है।

**व्याख्या**

**झंझा है दिग्भ्रांत.....प्रभाती तक चलने दो।**

ये पंक्तियाँ महादेवी के प्रसिद्ध गीत'यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो' से ली गई हैं। यह गीत महादेवी के काव्य संग्रह'दीपशिखा' में संकलित है। दीप महादेवी का प्रिय प्रतीक है। यहाँ दीप आत्मचेतना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

गीत के इस अंश में दिग्भ्रम और विचार-शून्यता की स्थिति है। झंझा यहाँ तीव्र मानसिक वेदना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। रात एकान्त और अकेलेपन की प्रतीक है। रात्रि की मूर्च्छा ग़हरी है। यह रात बीतने वाली नहीं है। अर्थात् अकेलेपन की अवधि अभी समाप्त होने वाली नहीं है। पूजाविधान में पुजारी जिस प्रकार सेवक का मार्ग प्रशस्त करता है, उसी प्रकार आज दीप को यह कर्त्तव्य निभाना होगा। मनुष्य के गहरे संकट और अकेलेपन के क्षणों में उसकी अपनी आत्मचेतना और अपना विवेक ही उसे सहारा देता है। आत्मचेतना का यह दीप इन्हीं संकट के क्षणों में प्रहरी बन कर खड़ा रहता है। दैनिक जीवन की व्यस्तता और कोलाहल के बीच आत्मविवेक की इस बात को हम पहचान नहीं पाते हैं। दिन की हलचल यहाँ स्फूर्ति, ताज़गी और नवजीवन के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। नवजीवन के लौटने तक यह दीप जलता रहेगा। रात्रि के अंधकार को मिटाता रहेगा। अंधकार व्यक्तिगत जीवन में भी है और जगत जीवन में भी। इन दोनों प्रकार के अंधकार से इस दीपक को लड़ना है। इस दीपक के प्रकाश में दीप्ति की रेखा है। सांझ का प्रयोग महादेवी के काव्य में खूब हुआ है। साँझ कवयित्री के लिए मिलन और विरह का सम्मिलन बिंदु है। कवयित्री नवजीवन के उदयकाल तक आत्म-विवेक को बुझने नहीं देना चाहती है। इसके बुझने से जीवन में घनघोर अंधकार और निराशा छा जायेगी।

**विशेष**

1. कविता में तत्सम प्रधान शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा में प्रांजलता और प्रवाहमयता है।
2. आत्मानुभूति की प्रधानता है।
3. तुक संयोग और वर्ण आवृत्ति से संगीतात्मकता की सृष्टि हुई है।